बिहार राज्य

बनाम

के० के० मिश्र और अन्य

(State of Bihar

Vs.

K. K. Mishra and Others)

(29 अक्तूबर, 1969)

(न्या० जे० सी० शाह, जे० एम० शैलत, सी० ए० वैद्यलिंगम्, के० एस० हेगडे और ए० एन० रे)

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1898 (1898 का अधिनियम सं० 5)—धारा 144(6)—नगर मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 144(1) के अधीन प्रत्यर्थियों के विरुद्ध आदेश पारित किया जाना तथा बाद में उपधारा (6) के अधीन उस आदेश की कालावधि को बढ़ाया जाना—उपधारा (6) के अधीन निर्बन्धन अधिरोपित करने की शक्ति कार्यपालक सरकार को प्रदत्त की गई है, न कि किसी न्यायिक प्राधिकारी को—उसमें ऐसा कोई भी उपबंध नहीं किया गया है जिससे कि व्यथित पक्षकार सरकार द्वारा दिए गए निदेश के विरुद्ध अभ्यावेदन या अपील या पुनरीक्षण के लिए आवेदन कर सके—साथ ही ऐसे आदेश को अस्थायी होना चाहिए—इस उपधारा के उपबन्धों से संविधान के अनुच्छेद 19(1) के उप-अनुच्छेद (ख), (ग) और (घ) का अतिक्रमण होता है।

जमशेदपुर स्थित टाटा यूनियन के कर्मकारों के दो भागों के बीच विवाद था। उस फर्म के जमशेदपुर के नगर मजिस्ट्रेट ने 21 मई, 1961 को दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 के अधीन एक प्रत्यर्थी के विरुद्ध आदेश पारित किया। उसके बाद बिहार के राज्य सरकार ने दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 की उपधारा (6) के अधीन आदेश पारित किया और उसे 18 जुलाई, 1961 को बिहार के राजपत्र में अधिसूचित किया। दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 की उपधारा (6) में यह उपबंध किया गया है कि धारा 144 के अधीन किया गया कोई भी आदेश उसके किए जाने की तारीख से दो वर्ष से अधिक की कालावधि तक प्रवृत्त नहीं रहेगा, जब तक कि मानव-जीवन, स्वास्थ्य या क्षेम के खतरे की

या बलवे या दंगे की संभाव्यता की दशाओं में राज्य सरकार शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा अन्यथा निर्दिष्ट न करे।

प्रत्यर्थियों ने पटना उच्च न्यायालय में इस आधार पर रिट पिटीशन फाइल किया कि संहिता की धारा 144(6) संविधान के अनुच्छेद 19(1)(ख), (ग) और (घ) के उपबंधों का अतिक्रमण करती है; इसलिए उसे अधिकारातीत घोषित किया जाना चाहिए। उच्च न्यायालय ने प्रत्यर्थियों की दलील स्वीकार करते हुए उपधारा (6) को संविधान के अधिकारातीत घोषित कर दिया। उसी आदेश के विरुद्ध बिहार राज्य ने इस न्यायालय में इस आधार पर अपील की है कि मजिस्ट्रेट ने मात्र प्रवर्तनीय आदेश किया था तथा सरकार ने उसकी कालावधि को भी बढ़ाया था। चूंकि सरकार का आदेश मजिस्ट्रेट के आदेश में विलीन हो गया था, इसलिए उस आदेश के विरुद्ध उपधारा (4) के अधीन पुनर्विलोकन किया जा सकता था तथा संहिता की धारा 439 के साथ पठित धारा 435 के अधीन पुनरीक्षण भी किया जा सकता था। अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित—न्या० शैलत, वैद्यलिंगम्, हेगडे और रे द्वारा व्यक्त मत दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 144(6) के प्रथम भाग में उस कालावधि को निश्चित किया गया है जिसके दौरान मजिस्ट्रेट द्वारा किया गया आदेश प्रवृत्त होगा। यदि यह प्रक्रिया समाप्त हो जाती है तो मजिस्ट्रेट को इसके अतिरिक्त कोई भी कृत्य नहीं करना होता है। उसके बाद यह बात स्पष्ट है कि वह अपने द्वारा किए गए आदेश के संबंध में भारमुक्त हो जाता है। उक्त उपधारा के दूसरे भाग के अधीन सरकार को प्रदत्त शक्ति स्वतंत्र शक्ति होती है। उसके अधीन कोई निदेश निकालने के पूर्व सरकार को नये सिरे से इस बात की परीक्षा करनी होती है कि क्या मानव-जीवन, स्वास्थ्य या क्षेम के खतरे की या बलवे या दंगे की संभाव्यता बनी हुई है; और यदि वह बनी हुई है, तो मजिस्ट्रेट द्वारा किया गया मूल आदेश कब तक प्रवृत्त रखा जाना चाहिए। यह सच है कि मजिस्ट्रेट का आदेश आधारिक आधार होता है, किन्तु यह विनिश्चय कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 की उपधारा (6) में वर्णित परिस्थितियां विद्यमान बनी हुई हैं और मूल आदेश को उस समय की कालावधि तक तथा अनिश्चित काल तक बनाए रखा जाना चाहिए, सरकार का होता है। यह मामला ऐसा नहीं है कि सरकार का आदेश मजिस्ट्रेट के आदेश में विलीन हो जाता है; यह मामला इसके बिल्कुल उलटा है। सरकार मजिस्ट्रेट के आदेश को अपने ही आदेश के रूप में अंगीकृत करती है। यदि सरकार अपने निदेश को अधिसूचित करती है, तो मूल आदेश के बनाए रखने का उत्तरदायित्व सरकार का होता है। इस बात की ओर ध्यान दिया जा सकता है कि सरकार जो निदेश देती है, उसे राजपत्र में

अधिसूचित करना होता है। धारा 144(6) के अधीन निर्देश जारी करने में जो प्राय: प्रक्रिया अपनाई जाती है, वह यही है। इन सभी बातों से यह बात स्पष्ट है कि प्रश्नगत निदेश राज्य सरकार का कार्यपालक निदेश है, जो कि संविधान के अनुच्छेद 166 की परिधि के भीतर आता है। यदि धारा 144(6) के अधीन दिया गया निदेश न्यायिक आदेश को मात्र प्रवृत्त बनाए रखने के लिए आशयित है, तो विधानमण्डल वह कृत्य न्यायिक प्राधिकारी को सौंपता है, जैसा कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 144(1) के अधीन किए गए आदेश की दशा में किया गया है। उसके अतिरिक्त यह बात बिल्कुल भी संभाव्य नहीं है कि विधानमण्डल ने यह विहित किया होता कि ऐसा निदेश राजपत्र में अधिसूचित किया जाना चाहिए। यदि हम अपने विधायी परिपाटी को ध्यान में रखें, तो इस दलील को स्वीकार करना कठिन है कि विधानमण्डल ने सरकार द्वारा दिए गए निदेशों का पुनर्विलोकन करने की शक्ति मजिस्ट्रेट को प्रदत्त की थी। धारा 144(4) में स्पष्ट शब्दों में यह उपबंध किया गया है कि मजिस्ट्रेट अपने द्वारा या किसी ऐसे मजिस्ट्रेट द्वारा जो कि उसका अधीनस्थ या पद में पूर्ववर्ती था, उस धारा के अधीन किए गए किसी आदेश को विखण्डित या परिवर्तित कर सकेगा। यह संभव नहीं है कि राज्य सरकार द्वारा किए गए आदेश को इस धारा की परिधि के भीतर लाया जाए। यदि विधानमण्डल का आशय राज्य सरकार द्वारा दिए गए निदेश को (जिससे वास्तव में आदेश अभिप्रेत है) इस उपधारा की परिधि के भीतर लाना है, तो उसमें उस समय ऐसा कथन किया गया होता जब कि उसने मजिस्ट्रेट के पद पूर्ववर्ती द्वारा या मजिस्ट्रेट के अधीनस्थ द्वारा किए गए आदेश के प्रति विनिर्दिष्ट रूप से निर्दिष्ट किया था। (पैरा 22)

धारा 144(6) को पढ़ने मात्र से ही यह स्पष्ट है कि राज्य सरकार को जो शक्ति प्रदत्त की गई है, वह स्वतंत्र शक्ति है और वह कार्यपालक शक्ति नहीं है। इस बात की आशा नहीं है कि उसका प्रयोग न्यायिक रूप से किया जाएगा। उसका प्रयोग मनमाने ढंग से भी किया जा सकता है। यह आवश्यक नहीं है कि उस शक्ति के प्रयोग में जो निदेश किए जाते हैं, वे अस्थायी प्रकृति के होते हैं। उस शक्ति की परिधि बहुत व्यापक है और वह अनियंत्रित है। (पैरा 23)

मूल अधिकारों पर निर्बन्धन अधिरोपित करने वाली विधियों की युक्तियुक्तता पर विचार करने में विधि के मुख्य और प्रक्रियात्मक पहलुओं की अभिरक्षा युक्तियुक्तता के दृष्टिकोण से करनी होती है, और युक्तियुक्तता की कसौटी, जहां कि वह विहित हो, प्रत्येक आक्षेपित कानून को लागू करना होता है और युक्तियुक्तता का कोई भी अमूर्त मानक या साधारण नमूना इस प्रकार से अधिकथित नहीं किया जा सकता है जिससे कि वह सभी मामलों को लागू हो

जाए। ऐसी प्रभावी कसौटी निर्धारित करना संभव नहीं है जिससे कि न्यायालय किसी विशिष्ट निर्बन्धन को अपने-आप ही युक्तियुक्त या अयुक्तियुक्त घोषित कर सके। सभी संबंधित परिस्थितियों को विचार में लिया जाना चाहिए और उनके अधिरोपण की रीति से या उनको व्यवहार में लेने के ढंग से निर्बन्धनों की वास्तविक अन्तर्वस्तुओं से कोई भी अलग नहीं हो सकता। अन्य शब्दों में युक्तियुक्त निर्बन्धन होने के लिए, उसे मनमाना या अत्यधिक नहीं होना चाहिए और निर्बन्धन के अधिरोपण की प्रक्रिया और रीति उचित तथा न्यायोचित होनी चाहिए। जो निर्बन्धन स्वातंत्र्य और न्याय के मौलिक सिद्धांतों के विरुद्ध हो, उसे युक्तियुक्त नहीं माना जा सकता। (पैरा 26)

यह जानने के लिए कि क्या निर्बन्धन युक्तियुक्त है, महत्वपूर्ण कसौटियों में से एक कसौटी यह देखना है कि क्या व्यथित पक्षकार को अधिरोपित या अधिरोपित किए जाने के लिए प्रस्थापित निर्बन्धन के विरुद्ध अभ्यावेदन करने का अधिकार प्राप्त है। किसी भी व्यक्ति को अपनी प्रतिरक्षा में सुनवाई किए जाने का अवसर दिए बिना उसकी स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जा सकता, और ऐसा अवसर पर्याप्त उचित तथा युक्तियुक्त होना चाहिए। इसके अलावा न्यायालय को यह बात देखनी होती है कि क्या निर्बन्धन अपेक्षा से अधिक है या यह कि वह मनमाने रीति में अधिरोपित किया गया है। (पैरा 27)

यद्यपि निर्बन्धन का उद्देश्य पहुंच के बाहर हो सकता है और उसे अनुच्छेद 19 के उप-अनुच्छेद (1) से लेकर (6) तक के उपबन्धों की संरक्षा भलीभांति प्राप्त हो सकती है, फिर भी यदि कानून में उसके दुरुपयोग के विरुद्ध पर्याप्त अभिरक्षा के लिए उपबन्ध नहीं किया गया है, तो प्रवर्तनीय धाराएं विधिमान्य हो जाएंगी। (पैरा 28)

ऐसे निर्बन्धन को अधिरोपित करने की शक्ति कार्यपालक सरकार को प्रदत्त की गई है, न कि न्यायिक प्राधिकारी को। इसमें ऐसा कोई भी उपबन्ध नहीं है जिससे कि व्यथित पक्षकार सरकार द्वारा दिए गए निदेश के विरुद्ध अभ्यावेदन कर सके और उस निदेश के विरुद्ध किसी भी अपील या पुनरीक्षण के लिए उपबन्ध नहीं किया गया है, यह आवश्यक नहीं है कि किया गया आदेश अस्थायी प्रकृति का हो। अतः उच्च न्यायालय का यह मत ठीक था कि आक्षेपित उपबन्ध से अनुच्छेद 29(1) (ख), (ग) और (घ) का अतिक्रमण हुआ है तथा उसे अनुच्छेद 19(3), (4) या (5) की संरक्षा प्राप्त नहीं है। (पैरा 29)

न्यायाधिपति शाह द्वारा दिया गया (विसम्मत) निर्णय

दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 (1) के अधीन आदेश करने के लिए मजिस्ट्रेट को जो शक्ति प्रदत्त की गई है, वह दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 435 और 439 के अधीन उच्च न्यायालय की अधिकारिता के अध्यधीन है। उच्च न्यायालय, पुनः इस धारा के अधीन किसी आदेश को विखण्डित या परिवर्तित करने से इन्कार करते हुए, उपधारा (4) के अधीन किसी आदेश को ठीक कर सकेगा। मजिस्ट्रेट उपधारा (1) में विहित शर्तों के अधीन, किन्तु अन्यथा नहीं, आदेश पारित कर सकेगा। ऐसा आदेश दो महीने से अधिक की कालावधि तक प्रवृत्त नहीं रहता है, जब तक कि राज्य सरकार मानव-जीवन, स्वास्थ्य या क्षेम के खतरे की या बलवे या दंगे की संभाव्यता की दशाओं में अन्यथा निदिष्ट न करे। "अन्यथा निदिष्ट" करने सम्बन्धी शक्ति में उस खतरे की अस्तित्वावधि या आपातकाल के लिए मजिस्ट्रेट के आदेश की अस्तित्वावधि को बढ़ाने सम्बन्धी प्राधिकार अन्तर्वलित है। किन्तु उपधारा (6) राज्य सरकार को इस बात के लिए प्राधिकृत नहीं करती है कि वह मजिस्ट्रेट के आदेश को स्थायी बना दे। राज्य को चाहिए कि वह 'अन्यथा निदिष्ट' करने में इस बात पर भी विचार करे कि क्या वह मानव-जीवन, स्वास्थ्य या क्षेम के खतरे की या बलवे या दंगे की संभाव्यता का मामला है, जिसके सम्बन्ध में मजिस्ट्रेट ने आदेश दिया है और यह कि क्या दो महीने से परे ऐसी कालावधि को बढ़ाना आवश्यक है और तब यह निदिष्ट करना आवश्यक है कि आदेश दो महीने से अधिक की कालावधि तक, न कि खतरे की आशंका या आपातकालीन स्थिति के समाप्त हो जाने के बाद, प्रवृत्त रहेगा। (पैरा 4)

ऐसा आदेश जिसकी अस्तित्वावधि राज्य की घोषणा द्वारा बढ़ा दी गई हो, मजिस्ट्रेट का आदेश होता है और बना रहता है। आदेश के प्राधिकार का स्वरूप राज्य सरकार से नहीं प्राप्त होता, बल्कि मजिस्ट्रेट से प्राप्त होता है। राज्य सरकार के निदेश का विस्तार केवल उसकी अस्तित्वावधि को लागू होता है। यह सच है कि संहिता में ऐसे किसी भी तंत्र के लिए उपबन्ध नहीं किया गया है जिससे कि राज्य सरकार द्वारा दिए गए निदेश को न्यायिक संवीक्षा के के अध्यधीन बनाया जा सके। उपधारा (6) के अधीन दिया गया निदेश सरकार के व्यक्तिपरक समाधान पर निर्भर नहीं होता है। समुचित आधारों पर निदेश को संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन फाइल किए गए पिटीशन में चुनौती दी जा सकती है। धारा 144 की उपधारा (4) के अधीन मजिस्ट्रेट को इस

बात के लिए प्राधिकृत किया गया है कि वह या तो स्वप्रेरणा से या किसी व्यथित व्यक्ति के आवेदन करने पर किसी ऐसे आदेश को विखण्डित या परिवर्तित करे जो कि उस धारा के अधीन किया गया हो। मजिस्ट्रेट आदेश पारित करता है और उसके प्राधिकार का स्रोत सरकार द्वारा उस आदेश की अस्तित्वावधि को बढ़ाए जाने के बाद भी मजिस्ट्रेट के न्यायिक कृत्य के प्रयोग में निहित होता है। अतः उपधारा (4) के अधीन इस बात के होते हुए भी कि राज्य सरकार ने दो महीने से परे ऐसे आदेश की अस्तित्वावधि को बढ़ाने के सम्बन्ध में निदेश दिया है, मजिस्ट्रेट अपने समक्ष प्रस्तुत सामग्री पर न्यायिक रूप से विचार करने के बाद आदेश को विखण्डित या परिवर्तित करने के लिए सक्षम होगा। चूंकि विधि और व्यवस्था कायम करने का अन्तिम दायित्व राज्य सरकार का होता है, इसलिए विधानमण्डल ने यह उपबन्ध किया है कि यदि ऐसे आदेश को दो महीने से अधिक की कालावधि तक प्रवृत्त रहना है, तो उसे राज्य सरकार की पूर्वानुमति प्राप्त होनी चाहिए। किन्तु उसके कारण मजिस्ट्रेट राज्य सरकार का अधीनस्थ प्राधिकारी नहीं बन जाता। राज्य सरकार कार्यपालिका की मुखिया होती है और मजिस्ट्रेट के न्यायिक कृत्यों के ऊपर किसी भी प्राधिकार का प्रयोग नहीं करती है। मजिस्ट्रेट राज्य सरकार से स्वतंत्र होता है और वह राज्य सरकार द्वारा की गई किसी भी घोषणा के बावजूद यदि परिस्थितियां उसे न्यायोचित ठहराएं, तो वह आदेश को विखण्डित या परिवर्तित करने का हकदार होता है। (पैरा 6)

धारा 144 के अधीन शक्ति का प्रयोग विधि और व्यवस्था बनाए रखने की बात सुनिश्चित करने के लिए आशयित है और उस प्रयोजन के लिए उस धारा के अधीन ऐसे मजिस्ट्रेट को जो कि राज्य की न्यायिक शक्ति का प्रयोग कर रहा हो, यह प्राधिकृत किया गया है कि पर्याप्त आधारों पर उसका समाधान होने के बाद और जहां कि यह आवश्यक है कि तुरन्त निवारण या शीघ्र उपाय वांछित है, वह समुचित आदेश करे। सामान्यतः धारा 144 की उपधारा (1) के अधीन मजिस्ट्रेट द्वारा किया गया आदेश उस समय तक प्रवृत्त बना रहता है जब तक कि वह उस प्रयोजन को सिद्ध करता है। किन्तु दो महीने के बाद वह प्रवृत्त नहीं बना रहता है। यदि खतरा या आपातकाल या उसकी आशंका गहरी है, तो राज्य सरकार निदेश द्वारा आदेश की अस्तित्वावधि को बढ़ाने के लिए सक्षम है। विधि और व्यवस्था बनाए रखने का कार्य मामूली तौर से कार्यपालिका का होता है, किन्तु धारा 144 के अधीन आदेश करने में नागरिकों के मूल अधिकारों का गम्भीर अतिलंघन अन्तर्वलित होता है इसलिए ऐसी शक्ति का प्रयोग ऐसी परिस्थितियों में जिनके कारण उसकी आवश्यकता हो, न्यायिक मूल्यांकन द्वारा

ही किया जा सकता है। जब कि आदेश सामान्य अस्तित्वावधि तक प्रवृत्त बना रहता है या कार्यपालिका के निदेश द्वारा बढ़ाया जाता है, तो मजिस्ट्रेट के अभिमत के परिणामस्वरूप वह बनाए रखा जाता है। यह आशंका कि कार्यपालिका अस्तित्वावधि को बढ़ाकर उस शक्ति का दुरुपयोग कर सकती है, मेरी राय में न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित करना न्यायोचित नहीं होगा कि ऐसी अभिवृद्धि के कारण आदेश के प्राधिकार के स्रोत में परिवर्तन हो जाता है या यह कि उससे मजिस्ट्रेट का मूल्यांकन दूषित हो जाता है। ऐसे अमूर्त मानक को स्वीकार नहीं किया जा सकता कि हर ऐसे कानून को जिसके निष्पादन में नागरिकों के मूल अधिकारों का अतिलंघन हो सकता है, उस दशा में अयुक्तियुक्त नहीं समझा जाएगा, यदि उसके ढांचे के भीतर कानूनी न्यायिक संवीक्षा के लिए या की गई कार्यवाही के विखण्डन के लिए तंत्र सम्बन्धी उपबन्ध नहीं किया गया है। यह नहीं स्वीकार किया जा सकता कि राज्य के निदेश के अनुसार निवारण के लिए उच्च न्यायालय के समक्ष समावेदन करने के लिए संहिता में किसी तंत्र का अभाव और अस्तित्वावधि के विखण्डन या परिवर्तन के लिए राज्य के सक्षम आवेदन करने पर अभिव्यक्त उपबन्ध का अभाव, ये दोनों ही बातें अयुक्तियुक्तता की कसौटी हैं। कानूनी उपबन्ध की युक्तियुक्तता निश्चित फार्मूला लागू करके अवधारित नहीं की जा सकती है। उसका अवधारण अतिलंघन किए जाने के लिए आशयित अधिकार की प्रकृति को, अधिरोपित किए जाने के लिए परिकल्पित निर्बन्धन के अन्तर्निहित प्रयोजन की, एतद्द्वारा उपचार किए जाने के लिए आशयित बुराई की गम्भीरता की, निर्बन्धन के अधिरोपण द्वारा प्राप्त किए जाने के लिए आशयित उद्देश्य की और अन्य सुसंगत परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए कानून के प्रक्रियात्मक और मुख्य उपबन्ध के आधार पर किया जाता है।
(पैरा 11)

पैरा

अनुसरित निर्णय

[1961]	(1961) 1 एस० सी० आर० 970 : **मध्य प्रदेश राज्य** बनाम **बलदेव प्रसाद** (State of Madhya Pradesh *Vs.* Baldeo Prasad);	28
[1958]	(1958) एस० सी० आर० 308 : **वीरेन्द्र** बनाम **पंजाब राज्य** (Virendra *Vs.* State of Punjab);	28

[1952] (1952) एस० सी० आर० 597 :
मद्रास राज्य बनाम वी० जी० राव
(State of Madras *Vs.* V. G. Rao); 10

[1950] (1950) एस० सी० आर० 579 :
डा० खरे बनाम दिल्ली राज्य
(Dr. Khare *Vs.* State of Delhi). 26

निर्दिष्ट निर्णय

[1961] (1961) 3 एस० सी० आर० 423 :
बाबूलाल पराते बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य
(Babulal Parate *Vs.* State of Maharashtra and Others). 17

सिविल अपीली अधिकारिता : 1966 की सिविल अपील संख्या 21.

1961 के प्रकीर्ण न्यायिक मामला संख्या 757 में पटना उच्च न्यायालय के तारीख 22 जनवरी, 1962 वाले निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील।

अपीलार्थी की ओर से	श्री वी० गोवर्धन
प्रत्यर्थियों की ओर से	श्री एम० के० राममूर्ति
मध्यक्षेपी सं० 1 की ओर से	सर्वश्री बी० सेन और एस० पी० नायर
मध्यक्षेपी सं० 2 की ओर से	सर्वश्री एल० एम० सिंघवी और एस० पी० नायर

[न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति हेगडे ने अपनी ओर से और न्या० जे० एम० शैलत, सी० ए० वैद्यलिंगम्, और ए० एन० रे की ओर से दिया और न्यायाधिपति शाह ने विसम्मत निर्णय दिया]

न्यायाधिपति शाह—

पटना उच्च न्यायालय ने दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 की उपधारा (6) के दूसरे भाग को अधिकारातीत घोषित किया है। उपधारा (6) निम्नलिखित रूप में है—

"उस सूरत के सिवाय जब कि मानव जीवन, स्वास्थ्य या क्षेम के खतरे की या बलवे या दंगे की सम्भाव्यता की दशाओं में राज्य सरकार शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा अन्यथा निदिष्ट करे, इस धारा के

अधीन कोई भी आदेश उस आदेश के किए जाने की तारीख से दो मास से अधिक प्रवृत्त न रहेगा।"

उच्च न्यायालय के मत में धारा 144 के अधीन आदेश की अस्तित्वावधि को बढ़ाते हुए राज्य सरकार द्वारा किए गए आदेश नागरिकों की मूल स्वातन्त्र्य पर अयुक्तियुक्त निर्बन्धन अधिरोपित करता है, क्योंकि राज्य सरकार का आदेश न्यायिक संवीक्षा के अध्यधीन नहीं है और संहिता में विखण्डन के सम्बन्ध में किए जाने वाले आदेश को या ऐसे आदेश के प्रवर्तन को लागू किए जाने के सम्बन्ध में किसी भी तन्त्र के सम्बन्ध में उपबन्धित नहीं है।

2. धारा 144 का उपबन्ध इसलिए किया गया है जिससे कि अपदूषण या आशंकित खतरे के अति-आवश्यक मामलों में अस्थायी आदेश वहां दिया जा सके जहां कि तुरन्त निवारण या शीघ्र उपचार वांछनीय हो। उसमें यह उपबन्ध किया गया है कि जब इस निमित्त सक्षम मजिस्ट्रेट की यह राय हो कि इस धारा के अधीन कार्यवाही करने का पर्याप्त आधार है और तुरन्त निवारण या शीघ्र उपचार वांछनीय है, तो मजिस्ट्रेट किसी व्यक्ति या सर्वसाधारण के विरुद्ध उस समय लिखित रूप में आदेश कर सकेगा जब कि वे किसी विशेष स्थान में जाते रहते हैं या जाएं, यदि उसका यह विचार हो कि ऐसे निदेश से यह सम्भाव्य है या ऐसे निदेश की यह प्रवृत्ति है कि विधिपूर्वक नियोजित किसी व्यक्ति को बाधा, क्षोभ या क्षति का या बाधा, क्षोभ या क्षति की जोखिम का, या मानव-जीवन, स्वास्थ्य या क्षेम को खतरे का या लोक-प्रशान्ति के विक्षुब्ध होने का या बलवे या दंगे का निवारण हो जाएगा तो ऐसे आदेश में मामले के तात्विक तथ्यों का कथन अवश्य ही किया जाना चाहिए और धारा 134 द्वारा उपबन्धित प्रकार से तामील कराई जानी चाहिए और वह किसी भी व्यक्ति को निदेश दे सकेगा कि वह (व्यक्ति) अमुक कार्य से विरत रहे या अपने कब्जे में की या अपने प्रबन्धनाधीन अमुक सम्पत्ति की अमुक व्यवस्था करे। आपात की दशाओं में, या उन दशाओं में जिनमें परिस्थितियां ऐसी हैं कि उस व्यक्ति पर, जिसके विरुद्ध वह आदेश निदिष्ट है, सूचना की तामील सम्यक् समय में करने की गुंजाइश नहीं है, एकपक्षीय आदेश पारित किया जा सकेगा। ऐसा आदेश दो महीने से अनधिक तक प्रवृत्त बना रहता है, जब तक कि मानव-जीवन, स्वास्थ्य या क्षेम को खतरे की या बलवे या दंगे की सम्भाव्यता की दशाओं में अन्यथा निदिष्ट न करे। यदि मजिस्ट्रेट स्वयं ही या ऐसा कोई मजिस्ट्रेट जो कि उसका अधीनस्थ हो या उसका पद में पूर्वाधिकारी हो, आदेश पारित करता है, तो ऐसा मजिस्ट्रेट उस आदेश को, स्वप्रेरणा से या किसी ऐसे व्यथित व्यक्ति के आवेदन करने पर ऐसे आदेश को विखण्डित या परिवर्तित कर सकेगा। मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत आवेदन को

विनिश्चित करने में उसे यह चाहिए कि वह या तो उसे स्वयं या प्लीडर द्वारा अपने समक्ष उपसंजात होने और आदेश के विरुद्ध हेतुक दर्शित करने का अवसर दे और यदि मजिस्ट्रेट आवेदन को पूर्णतः या अंशतः नामंजूर कर देता है, तो वह ऐसा करने के अपने कारणों को लिखित रूप में अभिलिखित करेगा।

3. इस न्यायालय ने **बाबूलाल पराते** बनाम **महाराष्ट्र राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया था कि धारा 144 का आशय अव्यवस्था, बाधा और क्षोभ को निवारित करके लोक कल्याण सुनिश्चित करना है। उसके अधीन जो शक्तियां प्रदत्त की गई हैं, उनका प्रयोग ऐसे मजिस्ट्रेट को करना होता है जो कि न्यायिक रूप से कार्य करता है और वह जिन अवरोधों की इजाज़त देता है, वे अस्थायी प्रकृति के होते हैं तथा उन्हें आपातकाल में अधिरोपित किया जा सकता है। इसके अलावा न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि जिन निर्बन्धनों के लिए इस धारा के अधीन प्राधिकृत किया गया है, वे संविधान के अनुच्छेद 19 के खण्ड (2) और (3) द्वारा विहित सीमा के परे नहीं हैं, क्योंकि ऐसे क्रियाकलाप का निवारण जैसे कि इस धारा के अधीन परिकल्पित हैं, लोक हित में होता है और इसी कारण से वह लोक-शान्ति के हित में किसी भी प्रकार से नहीं होता है। न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि इस धारा के अधीन जो विहित शक्ति प्रदत्त की गई है, उसका प्रयोग केवल आपातकालीन स्थिति में तथा जैसा कि उसमें विनिर्दिष्ट किया गया है, बाधा, क्षोभ या क्षति आदि को निवारित करने के लिए किया जा सकता है और उन्हीं बातों के परिणामस्वरूप ऐसी शक्ति का प्रयोग निश्चित रूप से किया जा सकता है। उसी कारण से ऐसी शक्ति असीमित या अनियंत्रित नहीं है और यह कि इस दलील को केवल इस आधार पर अभिखण्डित नहीं किया जा सकता कि मजिस्ट्रेट सम्भवतः अपनी शक्ति का दुरुपयोग कर सकता है। धारा 144 की विधिमान्यता को सम्पूर्ण रूप से चुनौती देने की बात **बाबूलाल पराते** बनाम **महाराष्ट्र राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में अस्वीकृत कर दिया गया था, किन्तु न्यायालय ने उस शक्ति की विधिमान्यता पर, जो कि दो महीने से परे आदेश की अस्तित्वावधि को बढ़ाने के सम्बन्ध में राज्य की कार्यपालिका में निहित है, स्पष्टतः इसलिए विचार नहीं किया क्योंकि उस निमित्त बार की ओर से कोई भी दलील नहीं दी गई।

4. धारा 144(1) के अधीन आदेश करने के लिए मजिस्ट्रेट को जो शक्ति प्रदत्त की गई है, वह दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 435 और 439 के

---

[1] (1961) 3 एस० सी० आर० 423.

अधीन उच्च न्यायालय की अधिकारिता के अध्यधीन है। उच्च न्यायालय, पुनः इस धारा के अधीन किसी आदेश को विखंडित या परिवर्तित करने से इंकार करते हुए उपधारा (4) के अधीन किसी आदेश को ठीक कर सकेगा। मजिस्ट्रेट उपधारा (1) में विहित शर्तों के अधीन, किन्तु अन्यथा नहीं, आदेश पारित कर सकेगा। ऐसा आदेश दो महीने से अधिक की कालावधि तक प्रवृत्त नहीं रहता है, जब तक कि राज्य सरकार मानव-जीवन, स्वास्थ्य या क्षेम के खतरे की या बलवे या दंगे की सम्भाव्यता की दशाओं में अन्यथा निदिष्ट न करे। "अन्यथा निदिष्ट" करने सम्बन्धी शक्ति में उस खतरे की अस्तित्वावधि या आपातकाल के लिए मजिस्ट्रेट के आदेश की अस्तित्वावधि को बढ़ाने सम्बन्धी प्राधिकार अन्तर्वलित है। किन्तु उपधारा (6) राज्य सरकार को इस बात के लिए प्राधिकृत नहीं करती कि वह मजिस्ट्रेट के आदेश को स्थायी बना दे। राज्य को चाहिए कि वह "अन्यथा निदिष्ट" करने में इस बात पर भी विचार करे कि क्या वह मानवजीवन, स्वास्थ्य या क्षेम के खतरे की या बलवे या दंगे की संभाव्यता का मामला है, जिसके सम्बन्ध में मजिस्ट्रेट ने आदेश दिया है और यह कि क्या दो महीने से परे ऐसी कालावधि को बढ़ाना आवश्यक है और तब यह निदिष्ट करना आवश्यक है कि आदेश दो महीने से अधिक की कालावधि तक न कि खतरे की आशंका या आपातकालीन स्थिति के समाप्त हो जाने के बाद, प्रवृत्त रहेगा।

5. यह निवेदन किया गया कि शक्ति के प्रयोग पर किसी कानूनी निर्बन्धन के अभाव में राज्य ऐसी शक्ति का दुरुपयोग कर सकता है और उसे स्थायी रूप से या उस कालावधि से अधिक कालावधि तक प्रवृत्त बनाए रख सकता है जो कि खतरे की आशंका या आपातकाल को न्यायोचित ठहराए। किन्तु शक्ति प्रदत्त करने वाले कानून की विधिमान्यता को इस अभिवाक् के आधार पर चुनौती दी जा सकती है कि ऐसी शक्ति का स्पष्टतः दुरुपयोग ऐसे प्राधिकारी द्वारा किया जा सकता है जिसमें वह निहित हो।

6. ऐसा आदेश जिसकी अस्तित्वावधि राज्य की घोषणा द्वारा बढ़ा दी गई हो, मजिस्ट्रेट का आदेश होता है और बना रहता है। आदेश के प्राधिकार का स्वरूप राज्य सरकार से नहीं प्राप्त होता, बल्कि मज़िस्ट्रेट से प्राप्त होता है। राज्य सरकार के निदेश का विस्तार केवल उसकी अस्तित्वावधि को लागू होता है। यह सच है कि संहिता में ऐसे किसी भी ऐसे तंत्र के लिए उपबंध नहीं किया गया है, जिससे कि राज्य सरकार द्वारा दिए गए निदेश को न्यायिक संवीक्षा के अध्यधीन बनाया जा सके। उपधारा (6) के अधीन दिया गया निदेश सरकार के व्यक्तिपरक समाधान पर निर्भर नहीं होता है। समुचित आधारों पर निदेश को

संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन फाइल किए गए पिटीशन में चुनौती दी जा सकती है। धारा 144 की उपधारा (4) के अधीन मजिस्ट्रेट को इस बात के लिए प्राधिकृत किया गया है कि वह या तो स्वप्रेरणा से या किसी व्यथित व्यक्ति के आवेदन करने पर किसी ऐसे आदेश को विखण्डित या परिवर्तित करे जो कि उस धारा के अधीन किया गया हो। मजिस्ट्रेट आदेश पारित करता है और उसके प्राधिकार का स्रोत राज्य सरकार द्वारा उस आदेश की अस्तित्वावधि को बढ़ाए जाने के बाद भी मजिस्ट्रेट के न्यायिक कृत्य के प्रयोग में निहित होता है। अतः उपधारा (4) के अधीन इस बात के होते हुए भी कि राज्य सरकार ने दो महीने से परे ऐसे आदेश की अस्तित्वावधि को बढ़ाने के सम्बन्ध में निदेश दिया है, मेरी राय में मजिस्ट्रेट अपने समक्ष प्रस्तुत सामग्री पर न्यायिक रूप से विचार करने के बाद आदेश को विखंडित या परिवर्तित करने के लिए सक्षम होगा। यह निवेदन किया गया कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 की उपधारा (1)(4) के अधीन शक्ति का प्रयोग करते हुए मजिस्ट्रेट राज्य सरकार का अधीनस्थ प्राधिकारी होता है और वह राज्य सरकार द्वारा किए गए आदेश को विखंडित या परिवर्तित नहीं कर सकता। वह दलील हमारे संविधान के अधीन प्रदत्त शक्तियों के विभाजन की वास्तविक प्रकृति को गलत समझने के कारण पेश की गई है। चूंकि विधि और व्यवस्था कायम करने का अन्तिम दायित्व राज्य सरकार का होता है, इसलिए विधानमण्डल ने यह उपबंध किया है कि यदि ऐसे आदेश को दो महीने से अधिक की कालावधि तक प्रवृत्त रहना है, तो उसे राज्य सरकार की पूर्वानुमति प्राप्त होनी चाहिए। किन्तु उसके कारण मजिस्ट्रेट राज्य सरकार का अधीनस्थ प्राधिकारी नहीं बन जाता। राज्य सरकार कार्यपालिका की मुखिया होती है और मजिस्ट्रेट के न्यायिक कृत्यों के ऊपर किसी भी प्राधिकार का प्रयोग नहीं करती है। मजिस्ट्रेट राज्य सरकार से स्वतंत्र होता है और वह राज्य सरकार द्वारा की गई किसी भी घोषणा के बावजूद, यदि परिस्थितियां उसे न्यायोचित ठहराएं तो, वह आदेश को विखंडित या परिवर्तित करने का हकदार होता है।

7. कार्यपालिका और नगरपालिका के कृत्यों के विभाजन की युक्ति के अधीन यह बात सत्य है कि धारा 144 के अधीन आदेश करने की शक्ति सारतः ऐसे निष्पादक मजिस्ट्रेटों में निहित होती है जो कि मजिस्ट्रेट मामलों में कार्यपालिका प्राधिकारियों के प्रति उत्तरदायी होते हैं किन्तु न्यायपालिका और कार्यपालिका की. शक्तियों के प्रथक्करण की युक्ति के अधीन धारा 144 के अधीन शक्ति का प्रयोग करने वाले मजिस्ट्रेट का कृत्य न्यायिक बना रहता है। असांविधानिक विवाद्यक को विनिश्चित करने में इस बात की उपधारणा करनी कि

प्रशासनिक ढांचे को अभिभावी बनाए रखने में, ऐसा निष्पादक मजिस्ट्रेट जिसमें दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 के अधीन शक्ति निहित हो, न्यायिकेतर विचारों के आधार पर, राज्य सरकार के निदेश को विखंडित नहीं कर सकता, शक्ति के दुरुपयोग और शक्ति के अविनिधान के बीच के प्रभेद को नजरंदाज करना है। यदि किसी विशिष्ट मामले में, कोई आदेश न्यायिकेतर विचारों के आधार पर किया जाता है, तो समुचित उपाय का सहारा लेकर उसे अपास्त कर दिया जाना चाहिए। किसी मजिस्ट्रेट को राज्य सरकार द्वारा ऐसे आदेश की अस्तित्वावधि को बढ़ाये जाने के बाद ऐसे आदेश को संशोधित या परिवर्तित करने की शक्ति से, मेरी राय में, केवल इस कारण वंचित नहीं किया जा सकता क्योंकि वह निष्पादक मजिस्ट्रेट है।

8. नागरिकों के मूल अधिकारों पर शक्ति के प्रयोग द्वारा अधिरोपित निर्बन्धनों की युक्तियुक्तता को समझने में, न्यायिक पुनर्विलोकन के लिए उपबंध का और उस शक्ति के प्रयोग में किए गए आदेश को वापस लेने या संशोधित करने वाले आदेश को अभिप्राप्त करने के तंत्र के प्रभाव को उचित महत्व देना होगा; **वीरेन्द्र** बनाम **पंजाब राज्य और एक अन्य**[1] वाला मामला देखिए। किन्तु, जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, राज्य सरकार को किसी व्यक्तिपरक समाधान के आधार पर आदेश नहीं देना होता है। ऐसा आदेश उपधारा (4) के अधीन विखंडित या परिवर्तित किया जा सकता है। मजिस्ट्रेट द्वारा किए गए आदेश की विधिमान्यता को उच्च न्यायालय के समक्ष चलाई जाने वाली कार्यवाही में राज्य सरकार के निदेश द्वारा उसके बढ़ाए जाने के बाद भी उसे समुचित आधार पर चुनौती दी जा सकती है, क्योंकि मजिस्ट्रेट के आदेश की विधिमान्यता की परीक्षा करने सम्बन्धी उच्च न्यायालय की अधिकारिता पर कार्यपालिका के निदेश द्वारा आदेश की अस्तित्वावधि के बढ़ाये जाने के कारण प्रभाव नहीं पड़ता है। धारा 144 की उपधारा (4) के अधीन किसी आदेश के वापस या उपांतरित करने सम्बन्धी कार्यवाही द्वारा ऐसे आदेश की अस्तित्वावधि को निदेश द्वारा बढ़ाए जाने के बाद भी चलाई जा सकेगी।

9. मैं यह अभिनिर्धारित करने में असमर्थ हूं कि मजिस्ट्रेट का आदेश राज्य सरकार के निदेश में उस समय विलीन हो जाता है जब कि उसकी अस्तित्वावधि बढ़ा दी जाती है। उपधारा (6) में यह उपबंध किया गया है कि मजिस्ट्रेट द्वारा किया गया आदेश उसके किए जाने की तारीख से दो महीने के बाद प्रवृत्त नहीं रह जाएगा जब तक कि विनिर्दिष्ट वर्ग के मामलों में राज्य

---

1. (1958) एस० सी० आर० 308.

सरकार अन्यथा निदिष्ट न करे। अतः राज्य सरकार के निदेश द्वारा ऐसी कालावधि के बढ़ाए जाने के बाद भी ऐसा आदेश मजिस्ट्रेट का आदेश बना रहता है। राज्य सरकार द्वारा की गई घोषणा ही उपधारा (6) द्वारा विहित प्रवर्तन पर अस्थायी परिसीमा को हटा सकती है।

10. **मद्रास राज्य** बनाम **वी० जी० राव**[1] वाले मामले में मुख्य न्यायाधिपति पातंजलि शास्त्री ने यह मत व्यक्त किया था कि मूल अधिकारों पर निर्बन्धन अधिरोपित करने वाली विधियों की युक्तियुक्तता पर विचार करने में, जहां कहीं भी युक्तियुक्तता की कसौटी विहित की गई हो, वहां उसे परस्पर आक्षेपित कानून पर लागू किया जाना चाहिए और युक्तियुक्तता का कोई भी अमूर्त मानक या साधारण नमूना इस प्रकार अधिकथित नहीं किया जा सकता जो कि सभी मामलों को लागू हो।

11. धारा 144 के अधीन शक्ति का प्रयोग. विधि और व्यवस्था बनाए रखने की बात को सुनिश्चित करने के लिए आशयित है और उस प्रयोजन के लिए उस धारा के अधीन ऐसे मजिस्ट्रेट को जो कि राज्य की न्यायिक-शक्ति का प्रयोग कर रहा हो, यह प्राधिकृत किया गया है कि पर्याप्त आधारों पर उसका समाधान होने के बाद, और जहां कि यह आवश्यक है कि तुरन्त निवारण या शीघ्र उपाय वांछनीय है, वह समुचित आदेश करे। सामान्यतः धारा 144 की उपधारा (1) के अधीन मजिस्ट्रेट द्वारा किया गया आदेश उस समय तक प्रवृत्त बना रहता है जब तक कि वह उस प्रयोजन को सिद्ध करता है, किन्तु दो महीने के बाद वह प्रवृत्त नहीं बना रहता है। यदि खतरा या आपातकाल या उसकी आशंका गहरी है, तो राज्य सरकार निदेश द्वारा आदेश की अस्तित्वावधि को बढ़ाने के लिए सक्षम है। विधि और व्यवस्था बनाए रखने का कार्य मामूली तौर से कार्यपालिका का होता है, किन्तु चूंकि धारा 144 के अधीन आदेश करने में नागरिकों के मूल अधिकारों का गम्भीर अतिलंघन अन्तर्वलित होता है, इसलिए ऐसी शक्ति का प्रयोग ऐसी परिस्थितियों के जिनके कारण उसकी आवश्यकता हो, न्यायिक मूल्यांकन द्वारा ही किया जा सकता है। जब कि आदेश सामान्य अस्तित्वावधि तक प्रवृत्त बना रहता है या कार्यपालिका के निदेश द्वारा बढ़ाया जाता है, तो मजिस्ट्रेट के अभिमत के परिणामस्वरूप वह बनाए रखा जाता है। यह आशंका कि कार्यपालिका अस्तित्वावधि को बढ़ाकर उस शक्ति का दुरुपयोग कर सकती है, मेरी राय में न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित करना न्यायोचित नहीं होगा कि ऐसी अभिवृद्धि के कारण आदेश के प्राधिकार के स्रोत में परिवर्तन

---

[1] (1952) एस० सी० आर० 597.

1969(10) eILR(PAT) SC 1

हो जाता है या यह कि उससे मजिस्ट्रेट का मूल्यांकन दूषित हो जाता है। मैं इस अमूर्त मानक को स्वीकार नहीं कर सकता कि हर ऐसे कानून को जिसके निष्पादन में नागरिकों के मूल अधिकारों का अतिलंघन हो सकता है, उस दशा में अयुक्तियुक्त नहीं समझा जाएगा, यदि उसके ढांचे के भीतर कानून में न्यायिक संवीक्षा के लिए या की गई कार्यवाही के विखंडन के लिए तंत्र सम्बन्धी उपबंध नहीं किया गया है। मैं न ही इस अभिवाक् को स्वीकार कर सकता हूं कि राज्य के निदेश के अनुसार निवारण के लिए उच्च न्यायालय के समक्ष समावेदन करने के लिए संहिता में किसी तंत्र का अभाव, और अस्तित्वावधि के विखंडन या परिवर्तन के लिए राज्य के समक्ष आवेदन करने पर अभिव्यक्त उपबंध का अभाव ये दोनों ही बातें अयुक्तियुक्तता की कसौटी हैं। कानूनी उपबंध की युक्तियुक्तता निश्चित फार्मूला लागू करके अवधारित नहीं की जा सकती है। उसका अवधारण अतिलंघन किए जाने के लिए आशयित अधिकार की प्रकृति को, अधिरोपित किए जाने के लिए परिकल्पित निर्बन्धन के अन्तर्निहित प्रयोजन को, एतद्द्वारा उपचार किए जाने के लिए आशयित बुराई की गम्भीरता को, निर्बन्धन के अधिरोपण द्वारा प्राप्त किए जाने के लिए आशयित उद्देश्य को और अन्य सुसंगत परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए कानून के प्रक्रियात्मक और मुख्य उपबंध के आधार पर किया जाता है।

12. मेरी राय में अपील को अवश्य ही मंजूर किया जाना चाहिए और उच्च न्यायालय ने जो आदेश पारित किया है, उसे अपास्त कर दिया जाना चाहिए।

न्यायाधिपति हेगडे—

13. संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन प्रत्यर्थियों द्वारा चलाई गई उस कार्यवाही पर पटना उच्च न्यायालय ने दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 की उपधारा (6) के दूसरे भाग के बारे में यह अभिनिर्धारित किया कि वह संविधान के अनुच्छेद 19 के खण्ड (1) के उपखण्ड (ख) (ग) और (घ) का अतिक्रमण करती है।

14. इस न्यायालय में प्रत्यर्थियों का प्रतिनिधित्व नहीं किया गया है। इस न्यायालय ने तारीख 7 अप्रैल, 1969 के आदेश द्वारा श्री राममूर्ति को जो कि इस न्यायालय का ज्येष्ठ अधिवक्ता है, अपील की सुनवाई के समय न्यायालय की सहायता करने की दृष्टि से न्याय-मित्र के रूप में नियुक्त किया। भारत संघ ने मध्यक्षेप किया है और श्री बी० सेन ने हमारे समक्ष उसका प्रतिनिधित्व किया है। चूंकि इस मामले में अन्तर्वलित प्रश्न का सीधा संबंध केन्द्रीय विधान-सभा

द्वारा अपनाए गए विधान से है, इसलिए अटार्नी जनरल को भी सूचना दी गई और डा० सिंघवी ने अटार्नी जनरल का प्रतिनिधित्व किया।

15. इस अपील के विनिश्चय के लिए एकमात्र जो प्रश्न उत्पन्न हुआ है, वह यह है कि क्या दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 की उपधारा (6) का दूसरा भाग अर्थात् ये शब्द—"उस सूरत के सिवाय जब कि मानव जीवन, स्वास्थ्य या क्षेम के खतरे की या बलवे या दंगे की सम्भाव्यता की दशाओं में राज्य सरकार शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा अन्यथा निर्दिष्ट करे" इसलिए अभिखण्डित किए जाने के दायित्वाधीन है क्योंकि वे संविधान के अनुच्छेद 19(1) के खण्डों में से किसी का अतिक्रमण करते हैं।

16. जिन तथ्यों के परिणामस्वरूप वर्तमान कार्यवाही की गई है वे निम्नलिखित रूप में हैं—

> "ऐसा प्रतीत होता है कि जमशेदपुर स्थित टाटा वर्कर्स यूनियन के कर्मकारों के दो भागों के बीच विवाद था। उस सम्बन्ध में जमशेदपुर के नगर मजिस्ट्रेट श्री के० एन० मिश्र, ने 21 मई, 1961 को दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 की उपधारा (1) के अधीन प्रत्यर्थी वर्मा के विरुद्ध आदेश पारित किया। उसके बाद उसने 20 जून, 1961 को प्रत्यर्थी के० के० मिश्र, साधु सिंह, पी० सी० जोशी और एम० एन० गोविन्दे के विरुद्ध दूसरा आदेश पारित किया। उसके बाद बिहार की राज्य सरकार ने दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 की उपधारा (6) के अधीन आदेश पारित किया और उसे 18 जुलाई, 1961 को बिहार राजपत्र में अधिसूचित किया। इस मामले में, अधिसूचना की विधिमान्यता विवाद्य है। वह अधिसूचना निम्नलिखित रूप में है—

"अधिसूचना

18 जुलाई, 1961

संख्या 8255 सी०—यतः जमशेदपुर के नगर मजिस्ट्रेट श्री के० एन० मिश्र ने दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 के उपबंधों के अधीन निम्नलिखित आदेश किए हैं—

1. सेवा में,

श्री आर० एल० वर्मा,

जमशेदपुर।

यतः मुझे यह मालूम करवाया गया है कि जमशेदपुर स्थित टाटा वर्कर्स यूनियन के अध्यक्ष ने 17 मई, 1961 को टाटा वर्कर्स यूनियन की साधारण सभा

में तुम्हारे विरुद्ध अविश्वास के प्रस्ताव के अनुसमर्थन विषयक संकल्प के अंगीकृत किए जाने के बारे में तुम्हें इत्तिला दी है और तुम्हें वह पत्र 18 मई, 1961 को मिल गया है, और फिर भी तुम जमशेदपुर, की के० रोड पर स्थित टाटा वर्कर्स यूनियन के कार्यालय में जाने से विरत नहीं हुए हो और मेरा समाधान हो गया है कि टाटा वर्कर्स यूनियन के कार्यालय में तुम्हारे जाने के परिणामस्वरूप गम्भीर शान्ति भंग हो सकती है, जिसका तुरन्त निवारण किया जाना आवश्यक है।

अतः मैं के० एन० मिश्र जो कि जमशेदपुर का नगर मजिस्ट्रेट हूं और दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 के अधीन विशेष रूप से सशक्त हूं, आज से 60 (साठ) दिनों की कालावधि तक जमशेदपुर के के० रोड बिस्तूपुर स्थित टाटा वर्कर्स यूनियन के कार्यालय में जाने से तुम्हें अवरुद्ध करता हूं। तुम्हें यह भी आदेश दिया जाता है कि तुम 25 मई, 1961 तक 6-30 बजे प्रातःकाल इस बात के संबंध में कारण बताओ कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 के अधीन किए गए इस आदेश को तुम्हारे विरुद्ध आत्यंतिक क्यों न बना दिया जाए।

आज तारीख 21 मई, 1961 को स्वहस्ताक्षरित और न्यायालय की मुद्रा लगाकर प्रदत्त।

ह० के० एन० मिश्र,
नगर मजिस्ट्रेट, जमशेदपुर,
20-6-1961

2. सेवा में,

(1) श्री कमला कान्त मिश्र, (2) श्री साधु सिंह
(3) श्री पी० सी० जोशी और (4) श्री एम० एन० गोविन्दे,
(सभी टाटा वर्कर्स यूनियन के)।

यतः बिस्तूपुर थाने के प्रभारी अधिकारी ने यह रिपोर्ट दी है कि टाटा वर्कर्स यूनियन के कार्यालय के सम्बन्ध में शान्ति भंग की गम्भीर आशंका है और वह अब भी बनी हुई है।

और यतः मेरा समाधान हो गया है कि शान्ति भंग की गम्भीर आशंका टाटा वर्कर्स यूनियन के दो प्रतिद्वन्दी समूहों के बीच प्रतिद्वन्दता के कारण अब भी विद्यमान है और उसे (शान्ति भंग को) तब तक अन्यथा निवृत्त नहीं किया जा सकता जब तक कि ओ० पी० के ये चारों सदस्य बिस्तूपुर के० रोड स्थित टाटा वर्कर्स यूनियन के कार्यालय और अहाते में केवल 30 (तीस) दिनों की अतिरिक्त कालावधि तक प्रवेश किए जाने से प्रतिषिद्ध नहीं कर दिए जाते। अतः मैं

के० एन० मिश्र जो कि जमशेदपुर का नगर मजिस्ट्रेट हूं और दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 के अधीन विशेष रूप से सशक्त हूं, श्री कमला कान्त मिश्र, श्री साधु सिंह, श्री पी० सी० जोशी और श्री एम० एन० गोविन्दे को बिस्तूपुर के० रोड स्थित टाटा वर्कर्स यूनियन के कार्यालय और अहाते में आज 20 जून, 1961 से 30 (तीस) दिनों की अतिरिक्त कालावधि तक, प्रवेश करने से एतद्द्वारा प्रतिषिद्ध करता हूं, और तुम्हें इस बात के लिए आदिष्ट करता हूं कि तुम इस बारे में कारण बताओ कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 के अधीन इस आदेश को तुम्हारे विरुद्ध क्यों न आत्यंतिक बना दिया जाए—यदि कोई कारण हो तो 29 जून, 1961 को 6-30 बजे प्रातःकाल बताया जाए।

आज तारीख 20 जून, 1961 को स्वहस्ताक्षरित और न्यायालय की मुद्रा लगाकर प्रदत्त।

ह० के० एन० मिश्र,
नगर मजिस्ट्रेट, जमशेदपुर
20-6-1961

और यतः उपर्युक्त आदेश का पर्यवसान 19 जुलाई, 1961 को हो रहा है और यतः बिहार के राज्यपाल का समाधान हो गया है कि वे परिस्थितियां जिनके परिणामस्वरूप इन आदेशों का देना आवश्यक हुआ था, अब भी विद्यमान हैं और यह कि इस बात की आशंका है कि वे अधिक समय तक बनी रह सकती हैं और यह कि यह आवश्यक है कि इन आदेशों को जमशेदपुर नगर के निवासियों के जीवन के क्षेम—हित में तथा बलवे या दंगे के जोखिम से बचने के लिए उनके पर्यवसान की वर्तमान तारीख के परे अतिरिक्त कालावधि तक बढ़ा दिया जाना चाहिए।

अतः उक्त संहिता की धारा 144 की उपधारा (6) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, बिहार के राज्यपाल अपने प्रसाद से यह निदिष्ट करते हैं कि उपर्युक्त आदेश बिहार राज्य में इस अधिसूचना के प्रकाशन की तारीख से चार महीने की कालावधि तक प्रवृत्त बना रहेगा जब तक कि वह किसी राजपत्र में अधिसूचना द्वारा पहले ही वापस न ले लिया जाए।

बिहार के राज्यपाल के आदेश से
एम० सिन्हा
सरकार के उप-सचिव"

17. इस प्रक्रम में हम यह बात बता सकते हैं कि तारीख 21 मई, 1961 और 20 जून, 1961 को जमशेदपुर के नगर मजिस्ट्रेट द्वारा किए गए आदेश की

विधिमान्यता को वर्तमान कार्यवाहियों में चुनौती नहीं दी गई थी, और न ही इसके पहले वर्णित धारा 144 के किसी प्रभाग से भिन्न प्रभाग की विधिमान्यता पर आक्षेप किया गया है। इस न्यायालय ने वर्तमान कार्यवाहियों में आक्षेपित भागों से भिन्न धारा 144 के भागों की विधिमान्यता को **बाबूलाल पराते** बनाम **महाराष्ट्र राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में कायम रखा है।

18. दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 के आक्षेपित भाग की विधिमान्यता पर विचार करने के लिए यह आवश्यक है कि हम सम्पूर्ण धारा को उद्धृत करें। वह धारा निम्नलिखित रूप में है—

"(1) उन मामलों में, जिनमें कि जिला मजिस्ट्रेट, मुख्य प्रेसिडेन्सी मजिस्ट्रेट, उपखण्ड मजिस्ट्रेट, या (राज्य सरकार) या मुख्य प्रेसिडेन्सी मजिस्ट्रेट या जिला मजिस्ट्रेट द्वारा इस धारा के अधीन कार्य करने के लिए विशेषतया सशक्त किए गए किसी भी अन्य मजिस्ट्रेट की (जो तृतीय वर्ग मजिस्ट्रेट न हो) राय में इस धारा के अधीन कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार है और तुरन्त निवारण या शीघ्र उपचार करना वांछनीय है,

यदि ऐसे मजिस्ट्रेट का यह विचार हो कि ऐसे निदेश से यह संभाव्य है, या ऐसे निदेश की यह प्रवृत्ति है कि विधिपूर्वक नियोजित किसी व्यक्ति को बाधा, क्षोभ या क्षति का या बाधा, क्षोभ या क्षति की जोखिम का, या मानव-जीवन, स्वास्थ्य या क्षेम के खतरे का या लोक प्रशान्ति के विक्षुब्ध होने का या बलवे या दंगे का निवारण हो जाएगा, तो ऐसा मजिस्ट्रेट मामले के तात्विक तथ्यों का कथन करते हुए और धारा 134 द्वारा उपबंधित प्रकार से तामील कराए गए लिखित आदेश द्वारा, किसी भी व्यक्ति को निदेश दे सकेगा कि वह अमुक कार्य से विरत रहे या अपने कब्जे में की या अपने प्रबन्धाधीन अमुक सम्पत्ति की अमुक व्यवस्था करे।

(2) इस धारा के अधीन आदेश आपात की दशाओं में, या उन दशाओं में, जिनमें परिस्थितियां ऐसी हैं कि उस व्यक्ति पर जिसके विरुद्ध वह आदेश निर्दिष्ट है, सूचना की तामील सम्यक् समय में करने की गुंजाइश नहीं है, एकपक्षीय पारित किया जा सकेगा।

---

[1] (1961) 3 एस० सी० आर० 423.

(3) इस धारा के अधीन आदेश विशिष्ट मनुष्य को अथवा साधारणतः लोक को जब कि वे किसी स्थान विशेष में जाते रहते हैं या जाएं, निदिष्ट किया जा सकेगा।

(4) कोई भी मजिस्ट्रेट या तो स्वप्रेरणा पर या किसी व्यथित व्यक्ति के आवेदन पर किसी ऐसे आदेश को विखण्डित या परिवर्तित कर सकेगा जो उसने या उसके अधीनस्थ किसी मजिस्ट्रेट ने या पद में उसके पूर्ववर्ती ने इस धारा के अधीन दिया हो।

(5) जहां कि ऐसा आवेदन प्राप्त होता है वहां मजिस्ट्रेट आवेदक को या तो स्वयं या प्लीडर द्वारा उपसंजात होने और आदेश के विरुद्ध हेतुक दर्शित करने का शीघ्र ही अवसर देगा; और यदि मजिस्ट्रेट आवेदन को पूर्णतः या अंशतः प्रतिक्षेपित कर देता है, तो वह ऐसा करने के अपने कारणों को लेखन द्वारा अभिलिखित करेगा।

(6) उस सूरत के सिवाय जब कि मानव जीवन, स्वास्थ्य या क्षेम के खतरे की या बलवे या दंगे की संभाव्यता की दशाओं में राज्य सरकार शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा अन्यथा निदिष्ट करे, इस धारा के अधीन कोई भी आदेश उस आदेश के किए जाने की तारीख से दो मास से अधिक प्रवृत्त न रहेगा।"

यह बात ध्यान देने योग्य है कि वरिष्ठ मजिस्ट्रेट ही धारा 144 की उपधारा (1), (2), (3), (4) और (5) के अधीन आदेश पारित कर सकते हैं।

19. इस न्यायालय ने **बाबूलाल पराते**[1] वाले मामले में धारा 144 में उपबंधित विभिन्न अभिरक्षाओं के कारण उसी धारा के अधीन मजिस्ट्रेट द्वारा किए गए आदेश की विधिमान्यता को कायम रखा था। यह बात देखी जा सकती है कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 144(1) के अधीन मजिस्ट्रेट द्वारा किया गया आदेश व्यथित पक्षकार द्वारा प्रस्तुत किसी अभ्यावेदन के आधार पर संशोधित किया जा सकता है और उच्च न्यायालय भी उसमें संशोधन कर सकता है। इस धारा के विश्लेषण से यह पता चलता है कि उस उपबंध के अधीन किया गया आदेश निम्नलिखित अभिरक्षाओं के अध्यधीन है—

(1) वरिष्ठ मजिस्ट्रेट को ही ऐसा आदेश करना होता है;

---

1 (1961) 3 एस० सी० आर० 423

1969(10) eILR(PAT) SC 1

(2) आदेश करते समय मजिस्ट्रेट को न्यायिक रूप से कार्य करना पड़ता है;

(3) ऐसा आदेश अल्प कालावधि तक प्रवृत्त रहेगा अर्थात् वह अस्थायी प्रकृति का आदेश होगा;

(4) ऐसे व्यथित पक्षकार को उस आदेश के विरुद्ध कारण बताने का अवसर दिया जाता है;

(5) धारा 144(4) के अधीन पेश किए गए आवेदन को अस्वीकृत करने के लिए मजिस्ट्रेट को कारण अभिलिखित करने पड़ते हैं।

(6) चूंकि मजिस्ट्रेट का आदेश न्यायिक आदेश होता है, इसलिए उसे दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 439 के साथ पठित धारा 435 के अधीन उच्च न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण में चुनौती दी जा सकती है।"

20. श्री राममूर्ति ने इस बात पर जोर दिया कि जहां विधानमण्डल ने मजिस्ट्रेट द्वारा किए गए आदेशों के सम्बन्ध में पर्याप्त अभिरक्षा का उपबंध किया है, वहीं उसने दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 की उपधारा (6) के दूसरे भाग के अधीन राज्य सरकार द्वारा किए गए आदेशों के सम्बन्ध में किसी भी अभिरक्षा के लिए उपबंध नहीं किया है; उस उपबंध के अधीन आदेश करने के पूर्व, राज्य सरकार से यह अपेक्षित नहीं है कि वह कोई जांच करे; आदेश के विरुद्ध व्यथित पक्षकार को कारण बताने का अवसर नहीं दिया गया; यह आवश्यक नहीं है कि राज्य सरकार द्वारा किया गया आदेश अस्थायी प्रकृति का हो और राज्य का आदेश न तो अपीलीय है और न ही संशोधनीय। अतः उसके मतानुसार अनुच्छेद 19(1) (ख), (ग), (घ) के अधीन प्रत्यर्थियों को प्रत्याभूत मूल अधिकारों पर अर्थात् शान्तिपूर्वक और निरायुध सम्मेलन के, संस्था या संघ बनाने या प्रत्येक राज्य-क्षेत्र में सर्वत्र अबाध संचरण के मूल अधिकारों पर अधिरोपित निर्बन्धन युक्तियुक्त निर्बन्धन है।

21. राज्य ने अभी तक जो आधार अपनाया है, वह संगत नहीं रहा है। उच्च न्यायालय के समक्ष बिहार राज्य के विद्वान् काउन्सेल श्री गोवर्धन और डा० सिंघवी ने अपील के जो आधार फाइल किए थे, उनमें और उनके द्वारा दी गई दलीलों के प्रारम्भिक प्रक्रम में यह आधार अपनाया गया था कि राज्य सरकार ने जो आदेश किया है, वह प्रशासनिक आदेश है और इस प्रकार से उसका न्यायिक पुनर्विलोकन नहीं किया जा सकता। किन्तु कुछ विचार-विमर्श के बाद और यह अनुभव करने के बाद कि उनकी दलील स्वीकार्य नहीं है, उन्होंने

अपने आधार में बिल्कुल ही तब्दीली कर दी और यह दलील दी कि प्रवृत्त आदेश केवल वे आदेश होते हैं जिन्हें मजिस्ट्रेट करता है; सरकार ने उन आदेशों की अस्तित्वावधि को बढ़ाया मात्र था; सरकार का आदेश मजिस्ट्रेट के आदेशों में विलीन हो गया; जिस आदेश की अस्तित्वावधि बढ़ाई गई है, उसका पुनर्विलोकन दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 की उपधारा (4) के अधीन किया जा सकता है और उसका संशोधन दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 439 के साथ पठित धारा 435 के अधीन किया जा सकता है।

22. अब हम इस बात पर विचार करना चाहेंगे कि क्या इस न्यायालय में पेश की गई दलील के नवीन प्रस्तुतीकरण के लिए कोई आधार है। हमने इसके पहले दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 की युक्ति देखी है। उसकी प्रथम उपधारा समुचित मजिस्ट्रेट को उसमें परिकल्पित आदेश करने के लिए सशक्त करती है। दूसरी उपधारा मजिस्ट्रेट को किन्हीं परिस्थितियों में एकपक्षीय आदेश पारित करने के लिए शक्ति प्रदत्त करती है। तीसरी उपधारा में ऐसे व्यक्ति के बारे में उपवर्णित किया गया है जिसके विरुद्ध मजिस्ट्रेट द्वारा किया गया आदेश निदिष्ट किया जा सकता है। चौथी उपधारा में उस मजिस्ट्रेट द्वारा जिसने आदेश किया था, या उसके पद में के उत्तराधिकारी द्वारा या उसके वरिष्ठ अधिकारी द्वारा या तो स्वप्रेरणा पर या व्यथित पक्षकार द्वारा अभ्यावेदन किए जाने पर, किए गए आदेश का पुनर्विलोकन करने के लिए उपबन्ध किया गया है। 5वीं उपधारा में वह प्रक्रिया अधिकथित की गई है जिसे सम्बन्धित मजिस्ट्रेट को प्राप्त अभ्यावेदन के सम्बन्धों में कार्यवाही करने के लिए अपनाना होता है। छठी उपधारा के प्रथम भाग में उस कालावधि को निश्चित किया गया है जिसके दौरान मजिस्ट्रेट द्वारा किया गया आदेश प्रवृत्त होगा। यदि उपरिवर्णित प्रक्रिया समाप्त हो जाती है तो मजिस्ट्रेट को इसके अतिरिक्त कोई भी कृत्य नहीं करना होता है। उसके बाद यह बात स्पष्ट है कि वह अपने द्वारा किए गए आदेश के सम्बन्ध में भारमुक्त हो जाता है। छठी उपधारा के दूसरे भाग के अधीन सरकार को प्रदत्त शक्ति स्वतन्त्र शक्ति होती है। उस उपधारा के अधीन कोई निदेश निकालने के पूर्व सरकार को नए सिरे से इस बात की परीक्षा करनी होती है कि क्या मानव-जीवन, स्वास्थ्य या क्षेम के खतरे की या बलवे या दंगे की सम्भाव्यता बनी हुई है; और यदि वह बनी हुई है, तो मजिस्ट्रेट द्वारा किया गया मूल आदेश कब तक प्रवृत्त रखा जाना चाहिए। यह सच है कि मजिस्ट्रेट का आदेश आधारिक आधार होता है, किन्तु यह विनिश्चय कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 की उपधारा (6) में वर्णित परिस्थितियां विद्यमान बनी हुई हैं और मूल आदेश को उस समय की

कालावधि तक तथा अनिश्चित काल तक बनाए रखा जाना चाहिए, सरकार का होता है। यह मामला ऐसा नहीं है कि सरकार का आदेश मजिस्ट्रेट के आदेश में विलीन हो जाता है; यह मामला बिलकुल इसके उलटा है। सरकार मजिस्ट्रेट के आदेश को अपने ही आदेश के रूप में अंगीकृत करती है। यदि सरकार अपने निदेश को अधिसूचित करती है, तो मूल आदेश के बनाए रखने का उत्तरदायित्व सरकार का होता है। इस बात की ओर ध्यान दिया जा सकता है कि सरकार जो निदेश देती है, उसे राजपत्र में अधिसूचित करना होता है। हमने इसके पहले यह देख लिया है कि इस मामले में जिस आदेश से हमारा सम्बन्ध है, उसे राज्यपाल ने किया था और उस पर सरकार के सचिव ने हस्ताक्षर किए थे। धारा 144 (6) के अधीन निदेश जारी करने में जो प्रायः प्रक्रिया अपनाई जाती है, वह यही है। इन सभी बातों से यह बात स्पष्ट है कि प्रश्नगत निदेश राज्य सरकार का कार्यपालक निदेश है, जो कि संविधान के अनुच्छेद 166 की परिधि के भीतर आता है। यदि धारा 144 (6) के अधीन दिया गया निदेश न्यायिक आदेश को मात्र प्रवृत्त बनाए रखने के लिए आशयित है, तो विधानमण्डल वह कृत्य न्यायिक प्राधिकारी को सौंपता है, जैसा कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 (1) के अधीन किए गए आदेश की दशा में किया गया है। उसके अतिरिक्त यह बात बिल्कुल भी संभाव्य नहीं है कि विधानमण्डल ने यह विहित किया होता कि ऐसा निदेश राजपत्र में अधिसूचित किया जाना चाहिए। यदि हम अपने विधायी परिपाटी को ध्यान में रखें, तो इस दलील को स्वीकार करना कठिन है कि विधानमण्डल ने सरकार द्वारा दिए गए निदेशों का पुनर्विलोकन करने की शक्ति मजिस्ट्रेट को प्रदत्त की थी। धारा 144 (4) में स्पष्ट शब्दों में यह उपबन्ध किया गया है कि मजिस्ट्रेट अपने द्वारा या किसी ऐसे मजिस्ट्रेट द्वारा जो कि उसका अधीनस्थ या पद में पूर्ववर्ती था, उस धारा के अधीन किए गए किसी आदेश को विखण्डित या परिवर्तित कर सकेगा। यह सम्भव नहीं कि राज्य सरकार द्वारा किए गए आदेश को इस धारा की परिधि के भीतर लाया जाए। यदि विधानमण्डल का आशय राज्य सरकार द्वारा दिए गए निदेश को (जिससे वास्तव में आदेश अभिप्रेत है) इस उपधारा की परिधि के भीतर लाना है, तो उसमें उस समय ऐसा कथन किया गया होता जब कि उसने मजिस्ट्रेट के पद में पूर्ववर्ती द्वारा किए गए या मजिस्ट्रेट के अधीनस्थ द्वारा किए गए आदेश के प्रति विनिर्दिष्ट रूप से निर्दिष्ट किया था। उस धारा की युक्ति, उसमें जिस प्रयुक्त भाषा और हमारी विधायी परिपाटी में प्रतिरक्षा के नए प्रस्तुतीकरण के विरुद्ध है जिसे बिहार राज्य, भारत संघ और अटर्नी जनरल की ओर से इस न्यायालय में अपनाया गया है।

1969(10) eILR(PAT) SC 1

23. धारा 144 (6) को पढ़ने मात्र से ही यह स्पष्ट है कि राज्य सरकार को जो शक्ति प्रदत्त की गई है, वह स्वतन्त्र शक्ति है और वह कार्यपालक शक्ति नहीं है। इस बात की आशा नहीं है कि उसका प्रयोग न्यायिक रूप से किया जाएगा। उसका प्रयोग मनमाने ढंग से भी किया जा सकता है। यह आवश्यक नहीं है कि उस शक्ति के प्रयोग में जो निदेश किए जाते हैं, वे अस्थायी प्रकृति के होते हैं। उस शक्ति की परिधि बहुत व्यापक है और वह अनियन्त्रित है।

24. डा० सिंघवी ने एक प्रक्रम में इस बात पर जोर दिया कि राज्य सरकार ने उस शक्ति के प्रयोग पर मात्र जो रोक लगाई है, वह सरकार के कार्यों की खोज करने सम्बन्धी ऐसी संवीक्षा है जिसकी हमारे विधायकों से आशा है। जैसा कि डा० सिंघवी हमसे चाहते हैं, हम यह उपधारणा करना चाहेंगे कि विधायक सरकार के कार्यपालक कार्यों की लगातार देखभाल करते रहते हैं। किन्तु उस बात से इस न्यायालय का उत्तरदायित्व समाप्त नहीं हो जाता। हम इस न्यायालय के सुविख्यात भूतपूर्व मुख्य न्यायाधिपतियों में से एक (श्री पातांजलि शास्त्री) द्वारा **मद्रास राज्य बनाम वी० जी० राव**[1] वाले मामले में व्यक्त इन अभिव्यक्तियों को उद्धृत करना चाहेंगे कि जहां तक मूल अधिकारों का सम्बन्ध है, संविधान ने इस न्यायालय को जागरूक प्रहरी की भूमिका प्रदान की है। विद्वान् मुख्य न्यायाधिपति ने उस मामले में यह मत व्यक्त किया था कि "जब कि यह न्यायालय विधायी निर्णय को स्वभावतः बहुत महत्व देता है, वह किसी आक्षेपित कानून की सांविधानिकता को अन्तिम रूप से अवधारित करने के अपने कृत्य का त्याग नहीं कर सकता।" यह इस न्यायालय के प्रति या अपने संविधान के प्रति या अपने प्रतिनिधियों के प्रति भी न तो उचित होगा और न ही न्यायोचित होगा, यदि यह न्यायालय इस उपधारणा के आधार पर अपने कार्य का त्याग करता है कि राज्य का अन्य अंग नागरिकों के मूल अधिकारों की अभिरक्षा करेंगे। डा० सिंघवी ने यह दलील दी है कि उसमें मूल अधिकारों, उसमें निहित आधारिक सिद्धान्तों और नागरिकों के मूल अधिकारों में विधायी हस्तक्षेप के विरुद्ध हमारे संविधान द्वारा सावधानी से उपबन्धित अभिरक्षाओं के स्वरूप की ही उपेक्षा की गई है। इसके अलावा वह संसदीय लोक तन्त्र में बहुमत के शासन के विचार के अतिसरलीकरण पर आधारित है। वह इस तथ्य की उपेक्षा करता है कि ये अभिरक्षाएं बहुमत के अधिकारों की संरक्षा करने के लिए मुख्यतः आशयित है। डा० सिंघवी की दलील में भी इस तथ्य को नजरंदाज किया गया है कि मूल अधिकार राज्य की कार्यवाहियों के विरुद्ध नागरिकों की संरक्षात्मक ढाल हैं। अतः यह कहने में कोई भी अर्थ नहीं है कि

[1] (1952) एस० सी० आर० 597.

विधायक इस बात का ध्यान रखेंगे कि उन अधिकारों पर आक्षेप नहीं किया जाए।

25. विनिश्चय के लिए जो वास्तविक प्रश्न है, वह यह है कि क्या आक्षेपित निर्बन्धन युक्तियुक्त निर्बन्धन है। जब तक कि उस निर्बन्धन को युक्तियुक्त निर्बन्धन के रूप में न माना जा सके तब तक उसे अनुच्छेद 19 के उप-अनुच्छेद (3), (4), और (5) की संरक्षा प्राप्त नहीं होती है, जिससे यह अभिप्रेत है कि वह निर्बन्धन अनुच्छेद 19 (1) (ख), (ग) और (घ) का अतिक्रमण करता है।

26. जैसा कि **डा० खरे** बनाम **दिल्ली राज्य**[1] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया था और **वी० जी० राव वाले मामले में**[2] पुनः यह दोहराया गया था कि मूल अधिकारों पर निर्बन्धन अधिरोपित करने वाली विधियों की युक्तियुक्तता पर विचार करने में विधि के मुख्य और प्रक्रियात्मक पहलुओं की अभिरक्षा युक्तियुक्तता के दृष्टिकोण से करनी होती है, और युक्तियुक्तता की कसौटी, जहां कि वह विहित हो, प्रत्येक आक्षेपित कानून को लागू करना होता है और युक्तियुक्तता का कोई भी अमूर्त मानक या साधारण नमूना इस प्रकार से अधिकथित नहीं किया जा सकता है जिससे कि वह सभी मामलों को लागू हो जाए। ऐसी प्रभावी कसौटी निर्धारित करना सम्भव नहीं है जिससे कि न्यायालय किसी विशिष्ट निर्बन्धन को अपने-आप ही युक्तियुक्त या अयुक्तियुक्त घोषित कर सके। सभी सम्बन्धित परिस्थितियों को विचार में लिया जाना चाहिए और उनके अधिरोपण की रीति से या उनको व्यवहार में लेने के ढंग से निर्बन्धनों की वास्तविक अन्तर्वस्तुओं से कोई भी अलग नहीं हो सकता। अन्य शब्दों में युक्तियुक्त निर्बन्धन होने के लिए, उसे मनमाना या अत्यधिक नहीं होना चाहिए और निर्बन्धन के अधिरोपण की प्रक्रिया और रीति उचित तथा न्यायोचित होनी चाहिए। जो निर्बन्धन स्वातन्त्र्य और न्याय के मौलिक सिद्धान्तों के विरुद्ध हो, उसे युक्तियुक्त नहीं माना जा सकता।

27. अब यह जानने के लिए कि क्या निर्बन्धन युक्तियुक्त है, महत्वपूर्ण कसौटियों में से एक कसौटी यह देखना है कि क्या व्यथित पक्षकार को अधिरोपित या अधिरोपित किए जाने के लिए प्रस्थापित निर्बन्धन के विरुद्ध अभ्यावेदन करने का अधिकार प्राप्त है। किसी भी व्यक्ति को अपनी प्रतिरक्षा में सुनवाई किए जाने का अवसर दिए बिना उसकी स्वतन्त्रता से वंचित नहीं

---

[1] (1950) एस० सी० आर० 579.

[2] (1952) एस० सी० आर० 597.

किया जा सकता, और ऐसा अवसर पर्याप्त उचित तथा युक्तियुक्त होना चाहिए। इसके अलावा न्यायालय को यह बात देखनी होती है कि क्या निर्बन्धन अपेक्षा से अधिक है या यह कि वह मनमाने रीति में अधिरोपित किया गया है।

28. यद्यपि निर्बन्धन का उद्देश्य पहुंच के बाहर हो सकता है और उसे अनुच्छेद 19 के उप-अनुच्छेद (1) से लेकर (6) तक के उपबन्धों की संरक्षा भलीभांति प्राप्त हो सकती है, फिर भी यदि कानून में उसके दुरुपयोग के विरुद्ध पर्याप्त अभिरक्षा के लिए उपबन्ध नहीं किया गया है, तो प्रवर्तनीय धाराएं विधिमान्य हो जाएंगी—**मध्य प्रदेश राज्य** बनाम **बलदेव प्रसाद**[1] वाला मामला देखिए। इस न्यायालय ने पंजाब स्पेशल पावर्स ऐक्ट (पंजाब विशेष शक्ति अधिनियम), 1956 की धारा 3 (1) के अधीन अधिरोपित निर्बन्धन को **वीरेन्द्र** बनाम **पंजाब राज्य**[2] वाले मामले में इस आधार पर अभिखण्डित कर दिया था कि उस अधिनियम में तद्धीन किए गए आदेश के प्रवर्तन के लिए तथा व्यथित पक्षकार द्वारा अभ्यावेदन करने के लिए कोई भी उपबन्ध नहीं किया गया है।

29. इस मामले में आक्षेपित निर्बन्धन के प्रति निर्देश करते हुए, यह मत व्यक्त किया गया कि ऐसे निर्बन्धन को अधिरोपित करने की शक्ति कार्यपालक सरकार को प्रदत्त की गई है, न कि न्यायिक प्राधिकारी को। इसमें ऐसा कोई भी उपबन्ध नहीं है जिससे कि व्यथित पक्षकार सरकार द्वारा दिए गए निदेश के विरुद्ध अभ्यावेदन कर सके; उस निदेश के विरुद्ध किसी भी अपील या पुनरीक्षण के लिए उपबन्ध नहीं किया गया है और यह आवश्यक नहीं है कि किया गया आदेश स्थायी प्रकृति का हो। अतः हम उच्च न्यायालय के इस मत से सहमत हैं कि आक्षेपित उपबन्ध से अनुच्छेद 19 (1) (ख), (ग) और (घ) का अतिक्रमण हुआ है तथा उसे अनुच्छेद 19 (3), (4) या (5) की संरक्षा प्राप्त नहीं है।

परिणामतः यह अपील निष्फल होती है और उसे खारिज किया जाता है।

आदेश

बहुमत की राय के अनुसार अपील खारिज की जाती है।

अपील खारिज की गई।

श्री०/के०

---

[1] (1961) 1 एस० सी० आर० 970.

[2] (1958) एस० सी० आर० 308.